

पाठ्यक्रम - २१

२१.अ

साधु परमेष्ठी की चर्या-२८ मूलगुण

जो सम्यगदर्शन, सम्यगज्ञान और सम्यगचारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त होते हैं, सिद्ध पद की प्राप्ति हेतु निरन्तर साधना करते हैं ऐसे दिग्म्बर मुद्राधारी महापुरुष साधु कहलाते हैं। श्रमण, यति, मुनि, अनगार, वीतराग, संयत, ऋषि, जिनरूप धारी भिक्षु इत्यादि साधु के अपर नाम हैं। श्रमण के २८ मूलगुण जिनेन्द्र देव ने कहे हैं -

- पाँच महाव्रत
- पाँच समिति
- पाँच इन्द्रियों को वश में करना (पंचेन्द्रिय विजय)
- छह आवश्यक
- सात विशेष गुण

महाव्रत

अपना मन
अपने विषय में
क्यों न सोचता
मोक्ष मार्ग तो
भीतर अधिक है
बाहर कम

हिंसादि पाँच पापों का स्थूल एवं सूक्ष्म रूप से पूर्णतः त्याग करना महापुरुषों का महाव्रत है। महाव्रत पाँच होते हैं -

१. अहिंसा महाव्रत, २. सत्य महाव्रत, ३. अचौर्य महाव्रत, ४. ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५. अपरिग्रह महाव्रत

१. अहिंसा महाव्रत- आत्मा में रागद्वेष आदि विकारी भावों की उत्पत्ति नहीं होने देना तथा षट्काय के जीवों की मन, वचन एवं काय से विराधना न करना “अहिंसा महाव्रत” कहलाता है।

२. सत्य महाव्रत - रागद्वेष, मोह के कारण असत्य वचन तथा दूसरों को सन्ताप करने वाले ऐसे सत्य वचन को छोड़ना “सत्य महाव्रत” है।

३. अचौर्य महाव्रत - बिना दिये हुए किसी भी प्रकार के पदार्थ एवं उपकरण का ग्रहण न करना “अचौर्य महाव्रत” है।

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत - स्त्री विषयक राग का, संपर्क का मन-वचन-काय से पूर्ण त्यागकर, ब्रह्म स्वरूप अपने आत्म तत्त्व में चर्या करना “ब्रह्मचर्य महाव्रत” है।

५. अपरिग्रह महाव्रत - अपने शुद्ध आत्म-स्वरूप की प्राप्ति के लिए दस प्रकार के बाह्य परिग्रह से बुद्धिपूर्वक स्वयं को मोड़ना एवं चौदह प्रकार के अन्तरंग परिग्रह के त्याग के लिए पुरुषार्थपूर्वक, मिथ्यात्व, कषाय एवं ममत्व का परित्याग करना “अपरिग्रह महाव्रत” है।

समिति

प्राणियों को पीड़ा न होवे ऐसा विचार कर दया भाव से अपनी सर्व प्रवृत्ति करना समिति है। समितियाँ पाँच कहीं गई हैं:-

१. ईर्या समिति, २. भाषा समिति, ३. एषणा समिति, ४. आदान-निक्षेपण समिति, ५. उत्सर्ग अथवा प्रतिष्ठापन समिति।

१. सूर्य के प्रकाश में प्रासुक मार्ग से (जिस मार्ग पर पहले से आवागमन शुरू हो चुका है) चार हाथ आगे की भूमि देखकर जीवों की विराधना न करते हुए, किसी प्रयोजन वश, संयमी का गमन करना “ईर्या समिति” है।

२. स्व और पर को मोक्ष की ओर ले जाने वाले कम शब्दों में स्पष्ट अर्थ को व्यक्त करने वाले, सन्देह रहित वचनों का बोलना भाषा समिति है।

३. श्रद्धा एवं भक्ति से श्रावक द्वारा नवधा भक्ति पूर्वक दिये गए निर्दोष आहार को ग्रहण करना “एषणा समिति” है।

४. शास्त्र आदि उपकरणों को आँखों से देखकर, सावधानीपूर्वक प्रमार्जित करके उठाना और रखना आदान-निक्षेपण समिति” है।

५. साधु वस्तिका से दूर, एकान्त, जीव-जन्तु रहित, बिल तथा छेद रहित, विशाल स्थान पर मल, मूत्रादि का क्षेपण करना “प्रतिष्ठापन अथवा उत्सर्ग समिति” है।

पञ्चेन्द्रिय विजय

पाँचों इन्द्रियों की स्वच्छन्द प्रवृत्ति को रोककर धर्म ध्यान, आत्महित में लगाना पञ्चेन्द्रिय विजय अथवा पञ्चेन्द्रिय निरोध है।

षट् आवश्यक

जिनके बिना सम्यक् चारित्र का निर्दोष पालन नहीं हो सके, जिनका करना आवश्यक हो, जरूरी हो, उन्हें आवश्यक कहते हैं मुनियों के छह आवश्यक कहे गए हैं वे इस प्रकार हैं।

१. समता, २. स्तुति (स्तवन), ३. वंदना, ४. प्रत्याख्यान, ५. प्रतिक्रमण, ६. कायोत्सर्ग।
१. शत्रु-मित्र में, बन्धु वर्ग में, सुख-दुःख में, संयोग-वियोग में, प्रशंसा-निन्दा में, लोह-सुवर्ण में, जीवन-मरण में, प्रिय-अप्रिय में सदा साम्य भाव रखना, राग-द्वेष, हर्ष-विषाद नहीं करना “समता आवश्यक” है।
२. चाँबीस तीर्थकरों के गुणों का बखान करते हुए स्तुति करना “स्तवन आवश्यक” है।
३. किसी एक तीर्थकर को नमस्कार करना, चैत्यालयादिकों के भेद को ग्रहण कर गुणानुवाद करना, नमस्कार करना “वंदना आवश्यक” है।
४. आगामी काल में पाप के आस्रव को रोकने के लिए पापों का त्याग करना कि मैं ऐसा पाप मन, वचन, काय से नहीं करूँगा तथा अयोग्य का त्याग करना, योग्य का भी जिसे आहार के पश्चात् योग्य काल पर्यन्त आहारादि का त्याग करना, “प्रत्याख्यान आवश्यक” है।
५. भूतकाल में लगे हुए दोषों के शोधनार्थ, प्रायशिचत्त, पश्चात्ताप व गुरु के समक्ष अपनी निन्दा-गर्हा करना, ‘मेरा दोष मिथ्या हो’ ऐसा गुरु से निवेदन करना ‘प्रतिक्रमण आवश्यक’ है।
६. देह के प्रति ममत्व का त्याग करना, खड़े-खड़े अथवा बैठे-बैठे शरीर का तथा कषायों का त्याग कर, आत्म स्वरूप में लीन होना ‘कायोत्सर्ग आवश्यक’ है।

सात विशेष गुण

साधु परमेष्ठी के शेष सात गुण निम्नलिखित हैं -

१. अचेलकृत्व (नगन्त्व), २. अस्नान, ३. अदन्त धावन, ४. एक भुक्ति,
५. स्थिति भोजन, ६. भूशयन, ७. केशलोंच।
१. वस्त्र, चर्म, पत्र आदि से शरीर को नहीं ढकना, जन्म लिए हुए बालक के समान नग्न रहना ‘अचेलकृत्व’ नामक गुण है।
२. जलकायिक जीवों की पीड़ा का परिहार करने लिए जल से नहाने रूप स्नानादि क्रिया का सदा के लिए त्याग करना श्रमणों का ‘अस्नान मूलगुण’ कहलाता है।
३. अनेक प्रकार के मंजन, चूर्ण, दातौन, काष्ठ औषधि नीबू फल आदि के माध्यम के दातों को नहीं मांजना, साफ नहीं करना साधु का “अदन्त धोवन” नामक मूलगुण है।
४. श्रावकों के घर में, मौन पूर्वक, हाथ पर रखे हुए आहार को दिन में एक बार ग्रहण करना “एक मुक्ति” नामक मूलगुण है।
५. चार अंगुल के अन्तर से समपाद खड़े रह कर, अपने खड़े रहने की भूमि, आहार कराने वाले की भूमि तथा जूठन पड़ने की भूमि, ऐसी तीन भूमियों की शुद्धता (जीव-जन्तु मलादि से रहित) से आहार ग्रहण करना “स्थिति भोजन” नामक मूलगुण है।
६. अल्प संस्तर (बिछौना) सहित एकान्त स्थान में दण्डाकार, धनुषाकार अथवा एक करवट से सोना “भूमि शयन” नामक मूलगुण है। अल्प संस्तर का अर्थ जिसमें बहुत संघर्ष का विघात न हो ऐसे तृणमय, काष्ठ मय, शिलमय और भूमि मय इन चार प्रकार का संस्तर लिया गया है।
७. उपवास पूर्वक सम्पूर्छन आदि जीवों की हिंसा के परिहार के लिए, शरीर से राग भाव दूर करने हेतु, हाथ से मस्तक तथा दाढ़ी, मूँछ के केशों का उखाड़ना, लोच करना ‘केशलोंच’ नामक मूलगुण कहलाता है।

‘इधर आओ, उधर जाओ’ ऐसा दूसरों को आदेश देने पर वह ईर्यापथ से नहीं आएगा जाएगा,
तो कहने वाले को पाप का बंध होगा। अतः आदेश से बचो।

पाठ्यक्रम - २१

२१.ब

आयुकर्म एवं उसकी बंध प्रक्रिया

जीव का किसी विवक्षित शरीर में टिके रहने की अवधि का नाम आयु है। इस आयु का निमित्तभूत कर्म आयुकर्म कहलाता है। आयु कर्म के अस्तित्व से प्राणी जीवित रहता है और क्षय होने पर मृत्यु के मुख में चला जाता है। मृत्यु का कोई देवता (यमराज) अथवा उस जैसी कोई अन्य शक्ति नहीं है अपितु आयु कर्म के सद्भाव और क्षय पर जन्म-मृत्यु अवलंबित है।

आयु दो प्रकार की होती है – अपवर्तनीय और अनपवर्तनीय।

अपवर्तनीय आयु – विष, वेदना, रक्त क्षय, शस्त्रघात, पर्वतरोहण आदि निमित्तों के मिलने पर जिस आयु की अवधि, काल की मर्यादा में कमी हो सके, उसे अपवर्तनीय आयु कहते हैं। इसे अकाल मरण अथवा कदलीघात मरण भी कहा जाता है। अकाल मरण को प्राप्त जीव अपनी आयु को अन्तर्मुहूर्त (कुछ समय) में ही पूर्ण कर लेता है किन्तु नवीन आयु कर्म के बंधे बिना मरण संभव नहीं। जैसे छिद्र सहित मटके में भरा हुआ पानी बूँद-बूँद कर टपकता हुआ पानी दो घंटे में मटके को खाली कर देता है वही मटका यदि किन्हीं कारणों से फूट जाए तो एक सेकंड में ही पूरा पानी बह जाता है, उसी प्रकार आत्मा में बंधे हुए आयु कर्म के निषेक क्रम-क्रम से उदय में आते हैं किन्तु अकालमरण की अवस्था में वे एक साथ नष्ट हो/ झड़ जाते हैं। अतः यह भी संभव है कि एक करोड़ वर्ष की आयु को अन्तर्मुहूर्त में ही भोग कर नष्ट कर दिया जावें।

अनपवर्तनीय आयु :- आयु क्षय के अनेक बड़े-बड़े कारण मिलने पर भी निर्धारित आयु की मर्यादा एक क्षण को भी कम न हो उसे अनपवर्तनीय आयु कहते हैं। देव-नारकी, भोग भूमि के जीव, चरम देहधारी, तीर्थकर अनपवर्तनीय आयु वाले होते हैं।

आयु कर्म का बंध सदा नहीं होता/इसके बंध का विशेष नियम है अपने जीवन की दो-तिहाई आयु व्यतीत होने पर ही आयु कर्म बंध है, वह भी अन्तर्मुहूर्त तक, इसे अपकर्ष काल कहते हैं। एक मनुष्य व तिर्यञ्च के जीवन में ऐसे आठ अपकर्ष काल आते हैं जिनमें वह आयु बाँधने के योग्य होता है। इन कालों में जीव आयु का बंध कर ही लेता है अन्यथा आयु कर्म की समाप्ति के अन्तर्मुहूर्त पूर्व नियम से आगामी आयु का बंध कर लेता है। जैसे मान लीजिए किसी व्यक्ति की ८१ वर्ष की आयु हो तो वह 51 वर्ष की अवस्था तक आयु कर्म के बंध के योग्य नहीं होता। वह आयु कर्म का बंध पहली बार 51 वर्ष की अवस्था में कर सकता है यदि उस काल में न हो, तो शेष 27 वर्ष के दो तिहाई (18 वर्ष बीतने पर) यानी 72 वर्ष में आयु बंध द्वितीय बार हो सकता है। यदि इसमें भी बंध न हो पाए तो शेष बची आयु के त्रिभाग में पुन बंध काल आवेगा इसी प्रकार आठवें अपकर्ष काल में वह जीव आयु बंध कर लेता है अंतिम अपकर्ष काल 80 वर्ष 11 माह 25 दिन 13 घंटे 21 मिनट की आयु बीतने पर पड़ेगा। यदि इसमें भी आयु बंध न हो पावे तो मरण के अन्तर्मुहूर्त पूर्व आगामी आयु का बंध नियम से कर लेता है। देव, नारकी तथा भोगभूमि मनुष्य व तिर्यञ्च अपने जीवन के छह माह शेष रहने पर आयु बंध के योग्य होते हैं। इन छह माह में उनके भी आठ अपकर्ष काल होते हैं।

गुरु तू न मिला, सारी दुनिया मिले भी तो क्या है।
मेरा मन न खिला, सारी बगिया खिले भी तो क्या है॥

गुरु तू॥

मैं धूल हूँ और तुम हो गगन, कैसे छुये तेरे पावन चरण।
लाख बन्धन यहाँ, मन में भक्ति पले भी तो क्या है॥

गुरु तू॥

तकदीर की मैं कोई भूल हूँ, डाली से बिछुड़ा हुआ फूल हूँ।
तेरा साथ नहीं, संग दुनिया चले भी तो क्या है॥

गुरु तू॥

चरणों में आके जो रो लेते हम, आँसू नहीं हैं वो मोती से कम।
तेरे चरण नहीं, मेरे आँसू गिरे भी तो क्या है॥

गुरु तू॥

जब जागो तभी सबेरा

एक सेठ जी थे वैसे तो बहुत धनवान किन्तु बड़े कंजूस। उससे एक पैसा भी खर्च नहीं होता था। बीमार पड़ गए तो बच्चों को डॉक्टर नहीं बुलाने देता था। एक बार बीमार पड़ा तो बच्चों ने उसे डॉक्टर को दिखाया, डॉक्टर ने कहा कि हजार रुपए लगेंगे, जबकि वह कहता कि पाँच सौ रुपए में तो अंत्येष्टि का सारा सामान ही आ जाएगा। वह मरणासन्न स्थिति में आ गया। निरंतर अपने धन, जमीन-जायदाद की रट लगा रहा था। डॉक्टर का कहना था कि यदि इनके दिमाग से तनाव बढ़ाने वाली सारी बातें निकाल दी जायें तो यह और जी सकता है।

यह सुनकर सेठ जी की पत्नी ने आखिर एक समाधान निकाला। उसने अपने पति सेठ के एक पुराने मित्र के बेटे को बुलाया, जो एक दर्जी था। पत्नी ने उससे कहा कि “मैं तो परेशान हो चुकी हूँ। अब आप समझा सको तो मेरे पति को समझाओ।” वह बेटा उस कंजूस के पास पहुँचा और कहा सेठ जी क्या आपको पता है कि डॉक्टरों ने कह दिया है कि आपकी मृत्यु कभी भी हो सकती है। सेठ ने गर्दन हिलाते हुए कहा हाँ भाई यह तो मुझे ज्ञात है। बेटे ने कहा अगर आप मर जायें तो मेरा एक काम अवश्य कीजिएगा।

सेठ ने उस काम के विषय में पूछा तो बेटे ने बताया, “मैंने बीती रात एक सपना देखा। सपने में मेरे स्वर्गस्थ पिताजी दिखे। उन्होंने कहा कि बेटे, मैं मरकर देवलोक आ गया हूँ। यहाँ इन्द्र ने मुझे आदेश दिया है कि मैं उनके लिए उत्तम वस्त्र तैयार करूँ। मैंने और तो सारे इंतजाम कर लिए हैं, वह यहाँ एक चीज नहीं मिलती वह चीज सुई है।” बेटा तू किसी के द्वारा सुई पहुँचा देना। सेठानी जी ने कहा आप कभी भी मर सकते हैं तो मैं तुरंत आपके पास चला आया हूँ, वह सुई देने के लिए कि जब आप मरकर यहाँ से स्वर्ग जायें तो जाते वक्त यह सुई लेकर जरूर जाएं। सेठ ने कहा मैं ले जाऊँगा, और सुई अपने पास रख ली। सुई पाकर सेठ की चिंतनधारा बदल गई। वह सोचने लगा कि मैं सुई कैसे ले जाऊँगा? उसने वह सुई अपनी कमीज (शर्ट) में लगा ली और सोचने लगा कि मैं अब नहीं भूलूँगा। शर्ट के साथ इसे टाँग लेता हूँ। फिर याद आया कि शर्ट तो लोग यहीं उतार लेंगे। फिर कैसे जाएगी? फिर सोचा शरीर के अंदर रख लूँ। उसने दर्द सहकर पैर में सुई गढ़ा ली। कुछ समय बाद याद आया और शरीर तो यहीं छूट जायेगा। फिर सुई कैसे जाएगी?

रात भर चिंतन-मनन करता रहा। प्रातः दोस्त का बेटा उसके पास पहुँचा और पूछा- “सेठजी आपने सुई ले जाने के लिए प्रबंध तो कर लिया है न?” सेठ ने कहा बेटा तूने सुई देकर मुझे जीवन का बोध दे दिया। सुई अपने पास रखकर मुझे यह ज्ञान हो गया है कि सुई मरने के बाद भी साथ में नहीं ले जाई जा सकती। बेटे ने कहा- सेठ जी जरा सोचिए कि जब यह सुई वहाँ तक नहीं जा सकती, तो फिर आपकी जमीन जायदाद, यह धन दौलत आपके साथ कैसे जाएगी? मृत्यु के बाद पुण्य-पाप ही साथ में जाते हैं। कहते हैं कि बाद में उस व्यक्ति ने उस धन से अनेक धर्मशालाएँ बनवाई, कई तालाब खुदवाये, स्कूल, औषधालय आदि बनवाकर सारा धन मानवता के कल्याण में समर्पित कर दिया।

शिक्षा - किसी व्यक्ति को सही मार्ग पर लाना चाहते हैं तो उसे समझाना चाहिए। यदि आपकी बात नहीं मानता तो किसी के द्वारा उसे समझ में आ सकता है उसके द्वारा समझवाना चाहिए।

सच है सूरि शांतिसागर संयम का रूप नहीं धरते।
 जो अपनी इस काया से युग का कायाकल्प नहीं करते॥
 मानवता मान नहीं पाती यदि जीवित मंत्र नहीं होते।
 यह भारत गारत बन जाता यदि ऐसे संत नहीं होते॥

रोम-रोम से

रोम-रोम से निकले प्रभुजी नाम तुम्हारा-२
 ऐसा दो वरदान कि फिर न पाँच जनम दुबारा॥

रोम-रोम से.....॥

छोड़ न पाँच प्रभुजी, पाँच ठगों का डेरा।
 किस विध आखिर पाँच, दर्शन प्रभुजी तेरा॥
 भटक न जाये ये बालक, प्रभु देना आप सहारा,

रोम-रोम से.....॥

दिल से निश दिन प्रभुजी, ज्योति जलाऊँ तेरी,
 कब तक मन की होगी, पूरी आशा मेरी।
 इन नैनों से, तेरी ज्योति का, देखूँ अजब नजारा,

रोम-रोम से.....॥

कोई न खाली जाये, तेरे दर से प्रभुजी,
 अपनी दया का हाथ तू, सर पे रख दे प्रभुजी।
 तेरे दर पर आये हैं, पाने दीदार तुम्हारा,

रोम-रोम से.....॥

एकीभाव स्तोत्र - वादीराज मुनिराज

एकीभावं, गत इव मया, यः स्वयं कर्मबन्धो, घोरं दुःखं, भवभव गतो, दुर्निवारः करोति ।

तस्याप्यस्य, त्वयि जिनरवे, भक्तिरुमुक्तये चेत्, जेतुं शक्यो, भवति न तया, कोऽपरस्तापहेतुः ॥१ ॥

अर्थ : (जिनरवे) हे जिनसूर्य ! (मया-सह) मेरी आत्मा के साथ (स्वयं) अपने आप (एकीभावं) तन्मयता को (गत इव) प्राप्त हुए की तरह (दुर्निवारः) बड़ी कठिनाई से दूर करने योग्य (यः) जो (कर्मबन्धः) कर्मबंध (भव-भवगतः : 'सन्') प्रत्येक पर्याय में साथ जाता हुआ (घोरम्) भयानक (दुःखम्) दुःख को (करोति) करता है (त्वयि) आपके विषय में होने वाली (भक्तिः) भक्ति अनुराग विशेष (चेत्) यदि (तस्य अपि अस्य उम्मुक्तये) उस कर्मबन्ध और इस दुःख के भी छुड़ाने-दूर करने के लिए है (तर्हि) तो फिर (तया) उस भक्ति के द्वारा (अपरः) दूसरा (कः) कौन (तापहेतुः) सन्ताप का कारण (जेतुं शक्यः न भवति) जीता नहीं जा सकता ? अर्थात् अवश्य जीता जा सकता है ।

ज्योतीरूपं, दुरितनिवह, ध्वान्तविध्वंसहेतुं, त्वामेवाहु, र्जिनवर चिरं, तत्त्वविद्याभियुक्ताः ।

चेतोवासे, भवसि च मम, स्फारमुद्भासमानस्, तस्मिन्नंहः, कथमिव तमो, वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥

अर्थ : (हे जिनवर !) कर्म शत्रुओं को जीतने वालों में श्रेष्ठ है जिनेन्द्र ! जबकि (तत्त्वविद्याभियुक्ताः) तत्त्व विद्या को जानने वाले ऋषि गण (चिरं) बहुत समय से (त्वाम् एव) आपको ही (दुरितनिवहध्वान्त विध्वंसहेतुम्) पापसमूहरूपी अन्धकार के नाश करने में कारणभूत (ज्योतीरूपम्) तेजरूप ज्ञानस्वरूप (आहुः) कहते हैं (च) और आप (मम) मेरे (चेतोवासे) मनरूपी मन्दिर में (स्फारं) अत्यन्तरूप से निरन्तर (उद्धासमानः) प्रकाशमान (भवसि) हो रहे हो तब (तस्मिन्) उस मन मन्दिर में (वस्तुतः) निश्चय से (अंहःतमः) पापरूपी अन्धकार (वस्तुं) निवास करने के लिए-ठहरने के लिए (कथं इव) किस तरह (ईष्टे) समर्थ हो सकता है ? अर्थात् नहीं हो सकता ।

आनन्दाश्रु, स्नपितवदनं, गदगदं चाभिजल्पन्, यश्चायेत त्वयि दृढ़मनाः, स्तोत्र मन्त्रैर्भवन्तम् ।

तस्याभ्यस्ता, दपि च सुचिरं, देहवल्मीकमध्यान्, निष्कास्यन्ते, विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ॥ ३ ॥

अर्थ : हे जिनेन्द्र ! (आनन्दाश्रुस्नपितवदनं च गदगदं) आनन्दाश्रुओं-हर्षरूपी आँसुओं से मुख को प्रक्षालित करता हुआ और अव्यक्त ध्वनि से (अभिजल्पन्) स्तुति करता हुआ (यः) जो मनुष्य (स्वयं) आपमें (दृढ़मनाः) स्थिर चित्त होकर (स्तोत्रमन्त्रैः) स्तवरूप मंत्रों से (भवन्तम्) आपको (अयेत्) पूजता है-स्तुति करता है (तस्य) उसके (सुचिरम्) चिरकाल से (अभ्यस्तात् अपि) परिचित भी (देहवल्मीकमध्यात्) शरीररूपी वामी के मध्य से- बीच से (विविध-विषमव्याधयः) अनेक प्रकार के कठिन रोगरूपी (काद्रवेयाः) साँप (निष्कास्यन्ते) बाहर निकाल दिए जाते हैं ।

प्रागेवेह, त्रिदिवभवना, देष्वता भव्यपुण्यात्, पृथ्वीचक्रं, कनकमयतां, देव निन्ये त्वयेदम् ।

ध्यानद्वारं, मम रुचिकरं, स्वान्तगेहं प्रविष्टस्, तत्किं चित्रं, जिन वपुरिदं, यत्सुवर्णीकरोषि ॥ ४ ॥

अर्थ : (देव !) हे भगवन् ! (भव्यपुण्यसात्) भव्य जीवों के पुण्य के द्वारा (इह) यहाँ पर (त्रिदिवभवनात्) स्वर्ग लोक से माता के गर्भ में (एष्वता) आने वाले (त्वया) आपके द्वारा (प्राकृएव) पहले ही जब (इदम्) यह (पृथ्वीचक्रम्) भूमण्डल पृथ्वी-मण्डल (कनकमयतां) सुवर्णमयता को (निन्ये) प्राप्त कराया गया था । तब (जिन !) हे जिनेन्द्र ! (ध्यानद्वारं) ध्यानरूपी दरवाजे से युक्त मम मेरे (रुचिकरम्) सुन्दर (स्वान्तगेहं) मनरूप मन्दिर में (प्रविष्टः) प्रविष्ट हुए (इदं वपुः) कुष्ठरोग से पीड़ित मेरे इस शरीर को (यत्) जो ('त्वम्') आप (सुवर्णीकरोषि) सुवर्णमय कर रहे हो (तत्किंचित्रम्) उसमें क्या आश्चर्य है ? अर्थात् कुछ नहीं ।

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन् निर्निमित्तेन बन्धुस्, त्वय्येवासौ, सकलविषया, शक्तिरप्रत्यनीका ।

भक्तिस्फीतां, चिरमधिवसन्, मामिकां चित्तशश्यां, मस्युत्पन्नं, कथमिव ततः, क्लेशयूथं सहेथाः ॥ ५ ॥

अर्थ : (भगवन् !) हे भगवन् ! जब (त्वम्) आप (लोकस्य) संसार के प्राणियों के (निर्निमित्तेन) स्वार्थ रहित-बिना किसी प्रयोजन के (एकः) अद्वितीय (बन्धुः असि) बन्धु-हित करने वाले हो और (असौ) यह (सकलविषयाशक्तिः) सब पदार्थों को विषय करने वाली शक्ति भी (त्वयि) आपमें ही (अप्रत्यनीका) बाधा रहित है (ततः) तब (भक्तिस्फीताम्) भक्ति के द्वारा विस्तृत (मामिकां) मेरी (चित्तशब्द्याम्) मनरूपी पवित्र शब्द्या पर (अधिवसन्) निवास करने वाले आप (मयि उत्पन्नम्) मुझमें उत्पन्न हुए (क्लेशयूथम्) दुःख समूह को (कथं एव) किस तरह (सहेथाः) सहन करेगे अर्थात् नहीं करेगे ।

जन्माटव्यां, कथमपि मया, देव दीर्घं भ्रमित्वा, प्राप्तैवेयं, तव नयकथा, स्फारपीयूषवापी ।

तस्या मध्ये, हिमकरहिम, व्यूहशीते नितान्तं, निर्मग्नं मां, न जहति कथं, दुःखदावोपतापाः ॥६॥

अर्थ : (देव !) हे स्वामिन् ! (मया) मेरे द्वारा (जन्माटव्यां) संसाररूपी अटवी में (दीर्घ) बहुत काल तक (भ्रमित्वा) घूमकर अथवा घूमने के बाद (तव) आपकी (इयम्) यह (नयकथा) स्याद्वादनय कथारूपी (स्फार-पीयूषवापी) बड़ी भारी अमृत रस से भरी हुई बावड़ी (कथं अपि) किसी तरह बड़े कष्ट से (प्राप्ता एव) प्राप्त ही कर ली गई है फिर भी (हिमकर-हिमव्यूहशीते) चन्द्रमा और बर्फ के समूह से भी शीतल (तस्याः) उसके (मध्ये) बीच में (नितान्तम्) अत्यन्तरूप से (निर्मग्नं) ढूबे हुए (माम्) मुझको (दुःख-दावोपतापाः) दुःखरूपी दावानल के सन्ताप (कथं न जहति) क्यों नहीं छोड़ते हैं ? अर्थात् अवश्य ही छोड़ देंगे ।

मंगल भावना

मंगलमय जीवन बने, छा जाए सुख छाँव ।
जुड़े परस्पर दिल सभी, टले अमंगल भाव ॥ १ ॥
'ही' से 'भी' की ओर ही, बढ़ें सभी हम लोग ।
छह के आगे तीन हो, विश्व शांति का योग ॥ २ ॥
यही प्रार्थना वीर से, अनुनय से कर जोर ।
हरी-भरी दिखती रहे, धरती चारों ओर ॥ ३ ॥
गुरु चरणों की शरण में, प्रभु पर हो विश्वास ।
अक्षय सुख के विषय में, संशय का हो नाश ॥ ४ ॥
मेरा - तेरा पन मिटे, भेदभाव का नाश ।
रीति-नीति सुधरे सभी, वेद भाव में वास ॥ ५ ॥
ऊधम से तो दम घुटे, उद्यम से दम आय ।
बनो दमी हो आदमी, कदम-कदम जम जाय ॥ ६ ॥
मरहम पट्टी बांध के, वृण का कर उपचार ।
ऐसा यदि न बन सके, डंडा तो मत मार ॥ ७ ॥
नम्र बनो मानी नहीं, जीवन वर-ना मौत ।
बेत बनो न बट बनो, सुर-शिव-सुख का स्रोत ॥ ८ ॥
तन मन से औं-वचन से, पर का कर उपकार ।
रवि सम जीवन बस बने, मिलता शिव उपकार ॥ ९ ॥
दिखा रोशनी रोशा न, शत्रु मित्र बन जाय ।
भावों का बस खेल है, शूल फूल बन जाय ॥ १० ॥

धोओ मन को धो सको, तन को धोना व्यर्थ ।
खोओ गुण में खो सको, धन में खोना व्यर्थ ॥ ११ ॥
निर्धनता वरदान है, अधिक धनिकता पाप ।
सत्य तथ्य की खोज में, निर्गुणता अभिशाप ॥ १२ ॥
अर्थ नहीं परमार्थ की, ओर बड़े भूपाल ।
पालक जनता के बने, बनें नहीं भूचाल ॥ १३ ॥
दूषण ना भूषण बनो, बनो देश के भक्त ।
उम्र बढ़े बस देश की, देश रहे अविभक्त ॥ १४ ॥
धर्म धनिकता में सदा, देश रहे बल जोर ।
भवन वही बस चिरटिके, नींव नहीं कमजोर ॥ १५ ॥
कब तक कितना पूछ मत, चलते चल अविराम ।
रुको-रुको यूँ सफलता, आप कहे यह धाम ॥ १६ ॥
गुण ही गुण पर में सदा, खोजूँ निज में दाग ।
दाग मिटे बिन गुण कहाँ, तामस मिटते राग ॥ १७ ॥
पंक नहीं पंकज बनूँ, मुक्ता बनूँ न सीप ।
दीप बनूँ जलता रहूँ, प्रभु-पद-पदम् समीप ॥ १८ ॥
यही प्रार्थना वीर से, शान्ति रहे चहूँ ओर ।
हिल-मिलकर सब एक हों, बढ़ें धर्म की ओर ॥ १९ ॥
गोमटेश के चरण में, नत हो बारम्बार ।
विद्यासागर कब बनूँ, भव सागर कर पार ॥ २० ॥

छठवीं ढाल (हरिगीतिका)

षट्काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरव हिंसा टरी ।
रागादि भाव निवारि तैं, हिंसा न भावित अवतरी ॥
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयौ गहै ।
अठदश सहस विधि शीलधर चिदब्रह्म में नित रमि रहै ॥१ ॥

अन्तर चतुर्दश भेद बाहिर, संग दशाथा तैं टलैं ।
परमाद तजि चउ कर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं ॥
जग सुहितकर सब अहितहर, श्रुति सुखद सब संशय हरैं ।
भ्रम-रोग हर जिनके वचन, मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं ॥२ ॥

छ्यालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को ।
लें तप बढ़ावन हेत नहिं तन, पोषते तजि रसन को ॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कैं गहैं लखि कैं धरैं ।
निर्जन्तु थान विलोकि तन मल, मूत्र श्लेषम परिहरैं ॥३ ॥

सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर-मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते ॥
रस रूप गन्ध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने ।
तिन में न राग विरोध, पंचेन्द्रिय जयन पद पावने ॥४ ॥

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को ।
नित करैं, प्रत्याख्यान प्रतिक्रम तजैं तन अहमेव को ॥
जिनके न न्हवन न दन्तधोवन, लेश अम्बर आवरन ।
भू माँहि पिछली रथनि में, कछु शयन एकाशन करन ॥५ ॥

इक बार दिन में लें अहार, खड़े अलप निज-पान में ।
कचलोंच करत न डरत परिष्ठह, सों लगे निजध्यान में ॥
अरि-मित्र महल-मसान कंचन-काँच निन्दन-थुतिकरन ।
अर्धावतारन असि-प्रहारन, में सदा समता धरन ॥६ ॥

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रतनत्रय सेवैं सदा ।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भवसुख कदा ॥
यों है सकलसंयम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब ।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटै पर की प्रवृत्ति सब ॥७ ॥

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादितैं, निज भाव को न्यारा किया ।
निज माँहि निज के हेतु, निज कर आपको आपै गह्यो ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मङ्गार कछु भेद न रह्यो ॥८ ॥

जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को, न विकल्प वच भेद न जहाँ ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न शुध, उपयोग की निश्चल दसा ।
प्रगटी, जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत, ये तीनथा एकै लशा ॥९ ॥

परमान-नय-निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै ।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै ॥
मैं साध्यसाधक में अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं ।
चितपिण्डचण्ड अखण्ड सुगुन-करण्ड च्युत पुनि कलनि तैं ॥१० ॥

यों चिन्त्य निज में शिर भये, तिन अकथ जो आनन्द लह्यो ।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र के नाहीं कह्यो ॥
तब ही शुकल ध्यानाग्नि करि चउधाति-विधि-कानन दह्यो ।
सब लख्यो केवलज्ञान करि, भविलोक को शिवमग कह्यो ॥११ ॥

पुनि धाति शेष अधाति-विधि छिन माँहि अष्टम भू बसैं ।
वसु-कर्म विनशै सुगुण वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये ।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये ॥१२ ॥

निज माँहि लोक अलोक, गुण-परजाय प्रतिबिम्बित थये ।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथा शिव परिणये ॥
धनि धन्य है वे जीव नरभव, पाय यह कारज किया ।
तिनही अनादि भ्रमन पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया ॥१३ ॥

मुख्योपचार दुभेद यौं, बड़भागि रत्नत्रय धरैं ।
अरु धरैंगे ते शिव लहैं, तिन, सुजस-जल जग-मल हरैं ॥
इमि जानि, आलस हानि, साहस ठानि यह सिख आदरो ।
जब लौं न रोग जरा गहै, तब लौं झाटिति निज हित करो ॥१४ ॥

यह राग-आग दहै सदा, तातैं समामृत सेझये ।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निजपद बेझये ॥
कहा रच्यो पर-पद में, न तेरो पद यहै, क्यों दुख सहै ।
अब 'दौल' होउ सुखी, स्वपद रचि, दाव मत चूकौ यहै ॥१५ ॥

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वैशाख ।
कर्यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख ॥१ ॥
लघुधी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थ की भूल ।
सुधी सुधार पढ़ो सदा, जो पावो भव कूल ॥२ ॥

अध्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

१. तप ऋद्धि के कोई पाँच भेद अर्थ सहित बताएँ ? २. अक्षीण ऋद्धि के दो भेद कौन से हैं ?
 ३. सत्याणु व्रत का क्या स्वरूप है ? ४. अनर्थ दण्ड त्याग व्रत का क्या अर्थ है ?
 ५. शिक्षाव्रत किसे कहते हैं ? ६. सुकुमाल की कौन-सी चेष्टाएँ देखकर राजा ने उसका नाम अवन्ती सुकुमाल रखा ?
 ७. दर्शनावरण कर्म की कितनी प्रकृति है अर्थ बताइए ? ८. अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यान कषाय किसे कहते हैं ?
 ९. संहनन किसे कहते हैं उसके कितने भेद हैं नाम बताइए ?
 १०. उपघात और परघात में क्या अंतर है ? ११. दानान्तराय और भोगान्तराय कर्म किसे कहते हैं ?
 १२. उत्तम संयम धर्म किसे कहते हैं उस पालनार्थ भावनाएं कौनसी हैं ?
 १३. ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह महाव्रत किसे कहते हैं ? १४. स्थिति भोजन नामक मूलगुण किसे कहते हैं ?
 १५. दो प्रकार की आयु एवं उसकी परिभाषा बताएँ ?

ब. छंद एवं श्लोक को पूर्ण करें।

- | | | | |
|-------------------|----------|------------------|-------------------|
| १. देव | धारो । | २. प्रथम | सम्यक्धारी । |
| ३. विवेक | एक । | ४. निश-दिन | चरणों में । |
| ५. ज्ञान | निवारण । | ६. लाख | ध्याओ । |
| ७. चहुँगति | लगारा । | ८. एकीभाव | कोपरस्ताप हेतुः ॥ |
| ९. पंक नहीं | समीप । | १०. यह राग | चुकौ सहै । |

स. परिभाषाएं लिखें।

- | | |
|------------------------------|----------------------------|
| १. पदानुसारी बुद्धि त्रिद्धि | २. प्राप्ति विक्रिया ऋद्धि |
| ३. जंघा चारण क्रिया ऋद्धि | ४. सर्वोषधि ऋद्धि |
| ५. ब्रह्मचर्य अनुव्रत | ६. सामायिक शिक्षाव्रत |
| ७. अवगाह दोष | ८. आनूपूर्व्य नाम कर्म |
| ९. दुर्भग नाम कर्म | १०. उत्तम शौच धर्म |
| ११. ईर्या समिति | १२. प्रत्याख्यान आवश्यक |

द. हाँ या ना में उत्तर दें-

- | | |
|---|---|
| १. मेरुसमान बड़ा शरीर बनाने वाली गरिमा ऋद्धि है । | २. अंतर्मुहूर्त में श्रुत का चिंतन करने वाली मनोबल ऋद्धि है । |
| ३. गुणव्रत चार नहीं होते हैं । | ४. खेद रूप परिणाम अरति है । |
| ५. मूल और किरणें ठण्डी उद्योत नामकर्म हैं । | ६. संतोष रूप परिणाम उत्तम शौच धर्म हैं । |
| ७. सनत चक्रवर्ती कुष्ट रोगी थे । | ८. आयुकर्म का बंध आठ अपकर्ष कालों में होता है । |
| ९. सेठ जी का बेटा बहुत कंजूस था । | |

इ. अन्यत्र ग्रंथों से खोजें, ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ -

- | | |
|---|---|
| १. ऋद्धियों का कैसे प्रयोग होता है ? | २. ऋद्धि धारी मुनियों के उदाहरण बताइए ? |
| ३. बारह व्रतों के पाँच-पाँच अतिचार कौन-कौन-से हैं ? | ४. गोत्र कर्म के छह भेद कौन से हैं ? |
| ५. स्पर्शादि के बीस भेद कौन से हैं ? | ६. १४८ में पुण्य और पाप प्रकृतियाँ कौन-कौन-सी हैं ? |
| ७. पांच महाव्रतों का निर्दोष पालन करने हेतु कौन-सी सावधानी रखना चाहिए ? | |
| ८. पंचेन्द्रिय विजय का विशेष स्वरूप क्या है ? | ९. वादिराज मुनिराज के जीवन में क्या घटना घटी थी ? |
| १०. एकीभाव का हिन्दी पद्यानुवाद पढ़ें पढ़ाएँ ? (परिशिष्ट पृ. 42-43 पर) | |